वन प्रबन्धन के केन्द्र में कॉर्पोरेट हैं, समुदाय नहीं

-वीरेन लोबो

(www.headlineseveryday.com में 8 अप्रैल, 2018 को प्रकाशित)

वन नीति का मसविदा 14 मार्च, 2018 को टिप्पणियों के लिये सार्वजनिक किया गया और सभी हितधारकों की टिप्पणियाँ 14 अप्रैल, 2018 तक आमन्त्रित की गईं। यह मसविदा, पूर्व में तैयार उस मसविदे का उल्लेख नहीं करता है जिसे भारतीय वन प्रबन्धन संस्थान (आई.आई.एफ.एम.) ने नागरिक समाज के साथ गहन विचार-विमर्श के बाद तैयार किया था, और जिसे अब हटा लिया गया है। इस मसविदे में अपने पूर्ववर्ती के रूप में वन नीति, 1988 का हवाला दिया गया है और यह स्वीकार किया गया है कि इस नीति के कारण वन आवरण में बढ़ोत्तरी हुई है। मसविदे में सहभागी वन प्रबन्धन की उपलब्धी का उल्लेख तो है किन्तु स्पष्टता के साथ यह कहने से बचा गया है कि संरक्षण की प्रक्रिया में स्थानीय समुदायों की भूमिका से ही ऐसा सम्भव हुआ है, जो कि इस नीति का सार-तत्व है।

नए मसविदे की आवश्यकता समझाते हुए जहाँ एक ओर वन नीति को नई अन्तरराष्ट्रीय सन्धियों के अनुरूप ढालने की बात कही गई है, वहीं दूसरी ओर वन अधिकार अधिनियम, 2006 (एफ.आर.ए., 2006) के उन सभी सन्दर्भों को हटा लिया गया है जो कि आई.आई.एफ.एम. द्वारा तैयार किए गए मसविदे में प्रमुखता से पेश किए गए थे। इसके बजाय नए मसविदे में लिखा है कि जहाँ तक वन अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत सामुदायिक वन संसाधनों के प्रबन्धन की बात है, तो इसे नई नीति में सहभागी वन प्रबन्धन के अन्तर्गत लिया जाएगा और जिसे प्रस्तावित सामुदायिक वन प्रबन्धन मिशन के माध्यम से लागू किया जाएगा। मसविदे का परीक्षण करने पर हमें मालूम होगा कि एफ.आर.ए., 2006 के सार-तत्व की व्याख्या में यह पेंच डालकर समुदाय को कैसे और क्यों दरकिनार कर दिया जाएगा।

मसविदे की धारा 4.10.3 के अनुसार क्षतिपूरक वनरोपण कोष, 2016 (सी.ए.एफ., 2016), जो कि राज्यों को हस्तान्तरित किया जा रहा है, निम्न कोटि के वन क्षेत्र के साथ-ही-साथ नए क्षेत्रों को वन एवं वृक्ष आवरण के अन्तर्गत लाने हेतु वनरोपण एवं पुनर्वास कार्यों के लिए धन का मुख्य स्रोत होगा। 'वन नीति का मसविदा - वनों के संरक्षण के बजाय क़ब्ज़ा करने के लिये बनता रास्ता' शीर्षक से अपने पिछले लेख में मैंने इस ओर इशारा किया था कि किस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय की चिन्ताओं को नज़रअन्दाज़ करते हुए क्षतिपूरक वनरोपण कोष, 2016 को कुटिलतापूर्वक पारित किया गया जिससे कि सरकार को इस कोष को मनमाफिक ख़र्च करने का अधिकार मिल जाए। यदि आवश्यकता हुई तो एक अन्य लेख में सी.ए.एफ., 2016 के बारे में चर्चा करेंगे, किन्तु अभी इतना कहना काफी होगा कि वन नीति, 2018 का मसविदा इस कोष को ख़र्च करने की

'विधिसम्मत रूपरेखा' प्रस्तुत करता है। अतः, इसकी कुछ धाराओं का परीक्षण यह समझने के लिए महत्वपूर्ण है कि आख़िर यह कोष किसलिए ख़र्च किया जाएगा।

धारा 4.1.1. 'डी' के अनुसार अधिकतर राज्यों में रोपित वनों की उत्पादकता बहुत कम है। रोपित वनों में व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण प्रजातियों, जैसे कि सागवान, साल, शीशम, चिनार, गमहर, यूक्लिप्टस, कसुआरिना, बाँस आदि, का गहन वैज्ञानिक तरीकों से प्रबन्धन करके इसका समाधान किया जाएगा। वन निगमों के पास उपलब्ध निम्न कोटि की एवं कम उपयोग में आने वाली भूमि का वैज्ञानिक तरीके से प्रबन्धन कर गुणवत्तापूर्ण इमारती लकड़ी का उत्पादन किया जाएगा। निम्न कोटि के वन क्षेत्रों और वन विकास निगमों के वन क्षेत्रों व वनों के बाहर भी वनरोपण एवं पुनर्वनीकरण की गतिविधियाँ संचालित करने के लिए सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की साझेदारी के मॉडल विकसित किए जायेंगे।

भेद खुल चुका है– समुदाय नहीं बल्कि कॉर्पोरेट, और संरक्षण की ओर उन्मुख नहीं बल्कि व्यावसायिकता इस नीति को नई धार देते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि व्यावसायिक उद्देश्यों से वनों का दोहन करने की इसी आवश्यकता ने वन विभाग को जन्म दिया था।

धारा 4.1.1. 'जी' के अनुसार वन एवं रोपित वनों का प्रबन्धन केन्द्र सरकार द्वारा स्वीकृत कार्य/प्रबन्धन आयोजनाओं, और साथ ही भारत सरकार, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मन्त्रालय के द्वारा समय–समय पर जारी दिशा–निर्देर्शों के अनुसार किया जाएगा। निजी वन/रोपित वन/वृक्ष भूमि को प्रबन्धन आयोजना के अनुरूप विनियमित किया जाएगा।

अर्थात्, होना तो यह चाहिए था कि ऐसी कार्ययोजना बनाई जाती जिसमें सामुदायिक वन अधिकारों (सी.एफ.आर.) को वन नीति के केन्द्र में रखा जाता तथा आजीविका एवं स्थायित्व के लक्ष्यों से संगत बिठाते हुए यह भूमिका निभाने के लिए समुदायों का क्षमतावर्द्धन किया जाता। इसके बजाय मन्त्रालय ने वन नीति 1988 पर ही प्रहार किया है तथा सरकार को नियन्त्रण एवं प्रबन्धन की प्रक्रिया के केन्द्र में ले आया है जिससे कि वन प्रबन्धन में कॉर्पोरेट को केन्द्रीय स्थान प्रदान किया जा सके, जैसा कि उपरोक्त धारा से स्पष्ट होता है।

समुदायों की भागीदारी, सरकार एवं उद्योगों की आवश्यकताओं एवं चिन्ताओं के अधीन व गौण होगी। यह सामुदायिक वन प्रबन्धन के सार–तत्व के पूर्णतः विपरीत है, जिसके बारे में पूरे मसविदे में जुमलेबाज़ी की गई है। अब हम सबके पास क्या विकल्प हैं?

(लेखक पारिस्थितिविज्ञानी हैं और इन्स्टीट्यूट ऑफ इकोलॉजी एण्ड लाइवलीहुड एक्शन के प्रमुख हैं)